सामाजिक नियंत्रण में पुलिस की भूमिका
(दंड व्यवस्था के विषेश संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

प्राप्तिः 02.08.2024
स्वीकृतः 16.09.2024

57

डॉ0 नवनीत कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
जे0एस0 हिन्दू (पी0जी0) कॉलेज, अमरोहा
ईमेलः *kumarnavneet570@gmail.com*

सारांश

जिस समाज में हम रहते हैं उस समाज में व्यक्तियों के व्यवहार एवं चाल–चलन पर सामाजिक नियंत्रण बहुत जरूरी है। जिससे समाज में व्यवस्था तथा सामाजिक संतुलन स्थिर रह सके। सामाजिक नियंत्रण के साधन या ढंग प्रत्येक समाज में अलग–अलग होते हैं तथा एक ही समाज में अलग–अलग समय में भिन्न होते हैं। व्यक्तियों का व्यवहार समाज की अपेक्षाओं तथा सामाजिक मानदंडों के अनुरूप ऐसी सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा तय किया जाता है जिससे उन मूल्यों, मानदंडों और वर्जनाओं का आंतरीकरण कर सकें जो उनकी आदतों–इच्छाओं तथा कार्यों को सामाजिक दृश्टि से तय कर सकें। आमतौर पर यह देखने में आता है कि सामाजिक मानदंडों का उल्लंघन या तो व्यक्ति की अपनी ही अन्तरात्मा की आवाज सुनकर या दंड के भय से रुकता है।

मुख्य बिन्दु

सामाजिक नियन्त्रण, पुलिस प्रशासन, दण्ड व्यवस्था।

जिस समाज में हम रहते हैं उस समाज में व्यक्तियों के व्यवहार एवं चाल–चलन पर सामाजिक नियंत्रण बहुत जरूरी है। जिससे समाज में व्यवस्था तथा सामाजिक संतुलन स्थिर रह सके। सामाजिक नियंत्रण के साधन या ढंग प्रत्येक समाज में अलग–अलग होते हैं तथा एक ही समाज में अलग–अलग समय में भिन्न होते हैं। व्यक्तियों का व्यवहार समाज की अपेक्षाओं तथा सामाजिक मानदंडों के अनुरूप ऐसी सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा तय किया जाता है जिससे उन मूल्यों, मानदंडों और वर्जनाओं का आंतरीकरण कर सकें जो उनकी आदतों–इच्छाओं तथा कार्यों को सामाजिक दृष्टि से तय कर सकें। आमतौर पर यह देखने में आता है कि सामाजिक मानदंडों का उल्लंघन या तो व्यक्ति की अपनी ही अन्तरात्मा की आवाज सुनकर या दंड के भय से रुकता है। सामाजिक दबाव व्यवहार के मानदंडों के उल्लंघन को रोकता है–जब दोस्त उल्लंघन करने वालों की उपेक्षा करने लगते हैं और उनको यह अहसास कराने लगते हैं कि वह उनके लिए बाहरी व्यक्ति हैं। इस प्रकार के सामाजिक दबाव उल्लंघन करने वालों को आसानी से सामाजिक पालन करनेवालों की मुख्यधारा में वापस ले आते हैं। न केवल औपचारिक नियंत्रण बल्कि द्वितीयक समूहों के सामूहिक नियंत्रण भी लोगों को सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप चलने को बाध्य करते हैं। हंसी उड़ाना, मजाक उड़ाना, विरोध में इधर उधर की बात करना और बहिष्कार जैसे अनौपचारिक नियंत्रण द्वितीयक समूहों के परिवेश में काम करते हैं, हालांकि आमतौर पर इनका प्रभाव कम होता है। कुछ भी हो सामाजिक नियंत्रण की कोई भी व्यवस्था पूर्ण रूप से कार्य नहीं करती है। यह भी देखने में आता है कि कुछ लोग सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप कार्य करने में सफल नहीं हो पाते हैं अर्थात हम कह सकते हैं कि वे सामाजिक मानदंडों से विचलित हो जाते हैं। इस प्रकार विचलन वह व्यवहार है जो एक समूह या समाज के मापदंडों के उल्लंघन का द्योतक होता है। समाज के नियमों के उल्लंघन को ही अपराध कहा जाता है। जेरोम हाल ने अपनी पुस्तक 'दी एक्स आफ क्रिमिनल ला' 1958 में लिखा है कि दंड पीड़ा पहुंचाता है तथा बलयुक्त व प्रतिरोधक होता है। राज्य के नाम पर पहुंचाया जाता है अर्थात यह अधिकारपूर्ण होता है, इसमें नियमों का व उनके उल्लंघन का पूर्ण अनुमान रहता है तथा निर्णय द्वारा अभिव्यक्त किया गया उस उल्लंघन का औपचारिक रूप से निश्चित किए जाने का पूर्व आभास होता है। दंड उस व्यक्ति जाता है जिसने कोई हानि पहुंचाई है। दंड का दिया रूप व उसकी सीमा पहुंचाई गई हानि के आधार पर तथा अपराधी के व्यक्तित्व, उसके उद्देश्य एवं उसे दिए गए प्रलोभन आदि के आधार पर घटाई या बढ़ाई जा सकती है।

बैन और फ्लियू ने क्राइम एंड जस्टिस, 1971 में लिखा है तथा दंड के कुछ तत्व भी बताए हैं–

- दंड में पीड़ा होनी चाहिए तथा पीड़ा के परिणाम अवश्य ऐसे होने चाहिए जिन्हें सामान्यतः अप्रिय माना जाता है,
- दंड कानूनी नियमों के विरुद्ध किए गए अपराध के लिए दिया जाना चाहिए,
- यह वास्तविक अपराधी को दिया जाना चाहिए जिसने अपराध किया है।
- दंड ऐसी सत्ता द्वारा दिया जाए जो कानूनी व्यवस्था द्वारा संस्थापित हो।
- दंड के चार 'द्वैतीयक आधार' हार्ट ने भी कहे हैंः उन कानूनी नियमों के उल्लंघन के लिए दिया गया दंड जो अधिकारियों द्वारा नहीं परन्तु अन्य के द्वारा दिया जाता है।

● गैर–कानूनी नियमों व व्यवस्थाओं के तोड़ने पर दिया गया दंड (जैसे स्कूलों या परिवार में दिए जाने वाले दंड),

● किसी सामाजिक समूह के सदस्यों को उन कार्यों के लिए दिया गया सामूहिक दंड जो उस व्यक्ति के अधिकृत किए गए बिना ही अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए हों तथा

● उन व्यक्तियों को दिया गया दंड जो न तो वास्तव में अपराधी हैं और न ही अपराधी समझे जाते हैं। दुर्खीम ने 'द डिवीजन आफ लेबर इन सोसायटी', 1963 में लिखा है कि दण्ड का सच्चा कार्य है सामाजिक संसक्ति (social coresion) को अक्षुण्ण व अखण्ड (Intact) बनाए रखना। जब व्यक्तियों को यह नजर आने लगता है कि राज्य अपराधियों के विरुद्ध दंडनीय कार्रवाई नहीं कर रहा है तो वे कानून अपने हाथ में ले सकते हैं। पुलिस समाज में अपराधी को पकड़ नहीं पाती, यदि पकड़ लेती है तो उसका केस इस प्रकार तोड़–मरोड़ कर कोर्ट में पेश किया जाता है ताकि अपराधी कोर्ट से छूट सके तथा वापिस आकर अपराध करते हुए पुलिस की जेब भरता रहे। इस प्रकार के कार्य से जनता का पुलिस पर से विश्वास हट जाता है तथा जनता व पुलिस में कटुता का भाव पनप जाता है और जनता पुलिस को सहयोग नहीं देती तथा अपराधी खुलेआम समाज में घूमता रहता है तथा जनता को नजर आता रहता है। कानून का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को समाज द्वारा दंड देने के लिए प्रमुख रूप से चार तर्क दिए गए हैं।

● प्रतिशोध व बदले की भावना को प्रभावी बनाना–

● अपराधी को शारीरिक रूप से रोकना ताकि भविष्य में उसके लिए अपराध करना सम्भव ही न होः दूसरों को कानून के उल्लंघन से रोकना तथा अपराधी का सुधार करना।

इन उद्देश्यों को दंड की उत्पत्ति के आधार पर उनका असर माना जाता है। लावी ने अपनी पुस्तक 'प्रिमिटिव सोसायटी', 1920 में लिखा है कि दंड की उत्पति के दो आधार हैंः

● विविध समूहों के हितों का संघर्ष क्योंकि एक समूह दूसरे समूहों पर अपनी सत्ता थोपता रहता था,

● ईश्वर को नाराज करने का डर। यह स्वीकार करते हुए कि दंड की उत्पति के मूल का पता लगाना आसान नहीं है। यह कहा जा सकता है कि अपराध और दंड उस संस्कृति से प्रकार्यात्मक रूप से जुड़े हैं जिस संस्कृति में अपराध होता है।

अपराधियों को दंड देने के मुख्य तरीके समय–समय तथा स्थान–स्थान पर भिन्न पाए जाते हैं। मानव इतिहास में कानून तोड़ने वालों को दंडित करने के लिए सामान्यतः छः तरीके प्रयुक्त होते रहे हैं ।

- मृत्यु दंड
- शारीरिक दंड (शारीरिक यातानाएं)
- कारावास
- अर्थदंड तथा
- सामाजिक पतन (बहिष्कार)

इनमें से निर्वासन और शारीरिक यातनाओं का इस्तेमाल अब समाप्त हो गया है। मृत्यु दंड

बिरले मामलों में दिया जाता है तथा सामाजिक बहिष्कार का तरीका जाति और समुदाय द्वारा ही अपनाया जाता है, न्यायालय द्वारा नहीं। अतः कारावास और आर्थिक हानि ही दो तरीके हैं जो आज प्रचलन में हैं। चूंकि मृत्युदंड समाज को भयंकर व विनाशकारी अपराधियों से बचाता है जो यदि दंडित न किया जाए तो लोगों का शोषित होना अपराधियों द्वारा निश्चित ही है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति आज यह जानता है कि हमारे राजनैतिक शासक वर्ग के लोग पुलिस का दुरुपयोग अपने निजी स्वार्थों के लिए ज्यादा से ज्यादा करते हैं तथा सच्चाई के रास्ते पर चलने की जनता के बीच दुहाई तथा दिखावा करते रहते हैं। उनकी अन्तरात्मा भी उनको धिक्कारती होगी परन्तु उनकी निष्ठुरता एवं अमानवीयता का उनके ऊपर दबदबा होने के कारण वह उसकी आवाज ही नहीं सुन पाते होंगे। तभी तो आज समाज राजनेताओं से तंग आ चुका है तथा इनकी कही बात पर विश्वास करने को तैयार नहीं है। राजनीतिज्ञ हमेशा पुलिस अर्थात वर्दीधारी पर अपना रौब गालिब करना पसन्द करते हैं। यह भी देखने में अक्सर आता है कि सांसद और विधानसभा सदस्य अपने चुनाव क्षेत्रों में एस.पी., डी.एस. पी. और यहां तक कि इंस्पेक्टरों और सिपाहियों की तैनाती में अवांछनीय रुचि का प्रदर्शन करते हैं ताकि वे उनकी मदद न केवल मतदाताओं पर निगाह रखने के लिए कर सकें बल्कि उनकी अवैध कार्रवाई में मदद कर सकें।

इसलिए समाज में तैनात पुलिस बल को कानून की प्रक्रिया को नष्ट करने का एक साधन, अधिकारवाद के विकास को प्रोत्साहित करने और प्रजातंत्र की जड़ों को ही हिलाने की दिशा में चला दिया है। सन् 1861 के भारतीय पुलिस अधिनियम की धारा 3 कहती है कि पुलिस का निरीक्षण और नियंत्रण राज्य सरकारों में निहित होगा और इन्हीं के द्वारा उनका संचालन होगा और उसका प्रशासन पुलिस महानिदेशक के हाथों में रहेगा। जिला स्तर पर पुलिस का निरीक्षण जिला अधिकारी के सामान्य नियंत्रण और निर्देश में होगा। जनता पुलिस को घुसपैठिया, शोषक, सनकी, पूर्वाग्रह से ग्रस्त तथा संदिग्ध समझती है। पुलिस के लिए प्रयोग किए जाने वाले जुमले–खाकी मधुमक्खी, खाकी गाड़ी के सैनिक, राक्षस, ठुल्ला आदि उनके प्रति गहरे क्रोध की अभिव्यक्ति करते हैं। अपराध का पता लगाने और दबाने के काम में पुलिस का काम कठिन और क्रान्तिहीन समझा जाता है। पुलिस का अधिकतर समय तथाकथित अतिविशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा व्यवस्था में ही बर्बाद हो जाता है। आवारागर्दी, जेबकतरों और असामाजिक तत्वों पर निगाह रखने और गश्त लगाने के लिए पुलिस को कम ही समय मिल पाता है। पुलिस विभाग में काम के प्रति लापरवाही तथा भ्रष्टाचार का प्रोत्साहन देने वाले तथ्य निम्न प्रकार से हैं।

- किसी व्यक्ति को पकड़ा जाए या नहीं, यह निर्णय करने में पुलिस का विवेकाधीन अधिकार,
- पुलिस के कार्य का कम दिखाई पड़ना तथा पुलिस संगठन की 'मुक्त समाज' होने की विशेषताय नैतिकता को लागू करने वाले कुछ कानून भी भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं। इस प्रकार कानून जनता के सदस्यों में विस्तृत मांग वाली सेवाओं और वस्तुओं को उन तक पहुंचाने में रोक लगाते हैं तथा पुलिस को रिश्वत लेने के अवसर प्रदान करते हैं जैसे जुआखोरी, शराब तथा वेश्यावृति।
- पुलिसकर्मी का एकजुट होना इस बात को दर्शाता है कि पुलिस वाले, पुलिस वाले के पकड़े जाने पर उसकी मदद भी करते हैं जो कि यह दिखाता है कि पुलिस की एकता उन्हें पकड़े जाने पर दंडित

होने के भय से मुक्ति प्रदान करती है। यदि इसी प्रकार की एकता जनता में आ जाए तब समाज से भ्रष्टाचार का सफाया हो ही जाएगा।

अपराध और दंड की क्लासिकलवादी व्याख्या का विकास अठारहवीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में हुआ था। क्लासिकलवादियों के पैराडायज में अपराध का कारण उस तार्किक आकलन से सम्बद्ध है जहां लाभ, मूल्य से अधिक बड़ा होता है। इस कारण दंड इतना कठोर होना चाहिए कि व्यक्ति फिर से वह अपराध करने के लिए भयग्रस्त रहे तथा, अपराध न करे। धेकेरिया ने अपनी पुस्तक 'ऐसेज आन क्राइम एंड पनिशमेंट', 1974 में लिखा है कि :

- मानव स्वभाव तर्कसंगत, स्वतंत्र और स्वार्थ से घिरा होता हैरू सामाजिक व्यवस्था मतैक्य तथा सामाजिक संविदा पर आधारित है,
- अपराध कानून संहिता का उल्लंघन है न कि सामाजिक प्रतिमानों का,
- अपराध का वितरण सीमित होता है तथा एक उचित प्रक्रिया द्वारा निश्चित किया जाता है,
- अपराध व्यक्ति के तार्किक प्रेरणा से किया जाता है,
- अपराध के संबंध में निर्णय व्यक्ति के अपने निकट के सम्भ्रान्त व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए अर्थात हम कह सकते हैं कि अन्य विवेकपूर्ण तथा समान व्यक्तियों द्वारा अपराध का निर्णय किया जाना चाहिए। न्यायाधीश स्पष्ट व व्यवस्थित विधि संहिता में निर्देशित होने चाहिए तथा
- अपराधी को दंडित करने में संयम का सिद्धांत लागू होना चाहिए अर्थात दंड पूर्व निर्धारित, पूर्व सहमत और पूर्व नियत होना चाहिए।

हम यह भी देखते है कि अपराधशास्त्र के क्लासिकलवादी सम्प्रदाय के चार प्रमुख सिद्धान्त थे :

- व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकार सुरक्षित रहने चाहिए
- वे सभी व्यक्ति जो एक ही प्रकार का अपराध करें, समान रूप से दंडित होने चाहिए,
- अपराध एक न्यायिक कल्पना है और इसलिए प्रत्येक अपराध के लिए एक निक्षित दंड होना ही चाहिए तथा
- दंड सामाजिक आवश्यकता के आधार पर सीमित होना चाहिए। इसकी सामाजिक आवश्यकता इसके प्रतिरोधात्मक प्रभाव में निहित है तथा उतना ही दिया जाना चाहिए जितना कि अन्य व्यक्तियों को उसी प्रकार के अपराध को करने से रोका जा सके।

दंड के प्रति बदलते परिवेश में क्लासिकवादी आनुपातिक दंड में विश्वास करते हैं, अर्थात

- दंड अपराध के अनुरूप होना चाहिए न कि अधिक
- दंड की मात्रा परिभाषित सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति पर निर्भर होनी चाहिए
- दंड यह मानकर नहीं दिया जाना चाहिए कि अपराधी समाज के लिए खतरनाक है

इस प्रकार अपराधी क्रिया न कि अपराधी, दंड का आधार हो और कानून सभी अपराधियों पर रामान रूप से लागू होना चाहिए। दंड का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के उत्तरदायित्वों एवं आकलन पर पड़ना चाहिए। दंड का उद्देश्य कष्ट देना या बदला लेना नहीं होना चाहिए। ताकि व्यक्ति को कानून का पालन कराना है इसलिए दंड उसके द्वारा किए गए सामाजिक नुकसान के अनुपात

में हो और केवल उसी सीमा तक हो जो भारी अपराधी कार्य को रोके। दंड का क्लासिकवादी सिद्धांत न तो अनुचित नरमी बरतने की अनुमति देता है और न ही अनावश्यक कठोरता की। वह यह भी मानते है कि यदि अपराधी अपनी क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है तब अपराधी को दंड देने का कोई अर्थ नहीं है। दंड के स्थान पर हमें उपचार पर बल देना चाहिए। मानवतावादी सिद्धान्त अपराधी के उपयोग पर ध्यान देते हैं तथा कहते हैं कि अपराधी को कारावास में रखा जाता है तब उसे तब तक नहीं छोड़ा जाना चाहिए जब तक वह यह न समझ ले कि वे सुधर गया है। यदि उसके कारावास की अवधि लम्बी है और उसके बारे में यह महसूस किया जाता है कि वह थोड़े समय में सुधर जाएगा या सुधर गया है तब उसको बन्दीगृह में और अधिक नहीं रखना चाहिए। हम यह भी कह सकते हैं कि निश्चित दंड व्यवस्था के स्थान पर अनिश्चित दंड व्यवस्था का प्रयोग।

दंड पर न्यायालयों के कुछ निर्णयों की विधायिका द्वारा यह कहकर आलोचना कि जाती है कि यह शासकों के अभिजात्य वर्ग के विषेशाधिकारों से उन्हें वंचित रखने का प्रयास है। अपराधियों के सुधार में रुचि लेने वाले कुछ लोग इस प्रकार के निर्णयों को अच्छा नहीं मानते। इस प्रकार के आदर्शों को समाज के लिए खतरा मानते हैं। यदि सामाजिक प्रतिमानों के उल्लंघन के लिए कोई दंड न दिया जाए और यदि दंड के साथ कोई नैतिक जिम्मेदारी न हो तब, प्रतिरोध का सामान्य लक्ष्य दंड की परिभाषा की परिधि के बाहर हो जाएगा। राजनैतिक आधिकारिक पदों पर न रहने के बाद व्यक्ति से सरकारी मकान बंगते खाली करवाने, न्यायालयों के निर्णय को न मानने, वरिष्ठ नौकरशाहों को जैसा कि कर्नाटक में और पुलिस अधिकारियों को जैसा कि हरियाणा में, कारावास का दंड देने, जनसमारोहों में पुलिस तथा अन्य अधिकारियों के व्यवहार को नियंत्रण में रखने जैसा पंजाब में, केंद्रीय जांच ब्यूरो की कुछ मामलों में जान–बूझकर जांच पड़ताल को लम्बा खींचने और महत्वपूर्ण साक्ष्य को गायब करने पर, जैसे चंद्रास्वामी के सेंट किट्स जांच में खिंचाई करते हुए, कक्षाओं में छात्रों तथा शिक्षकों की उपस्थिति नियमित करने के लिए विश्वविद्यालय के अधिकारियों को उत्तरदायी ठहराने, राज्यस्थान उच्च न्यायालय जैसे मामलों में उच्चतम तथा उच्च न्यायालयों के हाल ही. के निर्णय दाति हैं कि नियमों और कानूनों की व्यवस्था करने में परिवर्तन आए हैं। न्यायालय अब दंड संहिता की अव्यवस्था को विवेकपूर्ण बना रहे हैं। यह परिवर्तन प्रशंसनीय कहा जा सकता है कि न्यायाधीशों ने यह सब सोचसमझ कर ही चुना है। दंड का लक्ष्य अपराधी को कष्ट पहुंचाने की अपेक्षा मानवतावादी और सुधारवादी दृष्टिकोण की ओर खिसक गया है। धर्म एवं नैतिक दबाव के स्थान पर विज्ञान आज एक ऐसा साधन बन गया है जिससे असामाजिक लोगों को सामाजिक बनाया जा सके। परन्तु वार–बार अपराध करने की घटना के आंकड़े र्दशाते हैं कि विज्ञान भी सुधार की आवश्यतापूर्ण करने में समर्थ नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते है कि दंड के लक्ष्य और विधियों पर चर्चा लगातार, की जा सकती है। एक सम्प्रदाय तो दंड व्यवस्था के प्रतिरोधात्मक एवं प्रतिशोधात्मक जैसे परम्परागत लक्ष्यों को पूर्ण रूप से अस्वीकार करता है और दंड के लिए पुनर्वास दृष्टिकोण को अच्छा मानता है। निगेल बाकर ने 'क्राइम एंड जस्टिस' में दंड से संबंधित पांच सुझाव बताएं हैं:

मानवतावादः दंड व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे अपराधियों और दूसरे लोगों को कम से कम, 1 कष्ट पहुंचे,

हासवादः दंड व्यवस्था को अपराधी कानून द्वारा निषिद्ध व्यवहार के प्रकारों में कमी करनी चाहिए प्रतिशोधवादः दंड व्यवस्था अपराधियों तथा संदिग्ध अपराधियों को गैर अधिकारिक बदले की भावना से सुरक्षा प्रदान करने वाली होना चाहिए।

प्रायश्चितः दंड व्यवस्था यह सुनिश्चित करने के लिए बनी हो ताकि अपराधी अपने अपराध के कारण दंड भुगत कर प्रायश्चित कर सके।

निन्दा करनाः दंड द्वारा समाज की अपराध के प्रति घृणा प्रदर्शित होनी चाहिए। इस प्रकार हम यह भी महसूस कर सकते है कि इन पांच उद्देश्यों के साथ तीन और उद्देश्य भी शामिल किए जा सकते हैं जैसे कि

सांमजस्यः समान क्रियाओं को समान उपायों से निपटने की अपेक्षा दंड का व्यक्तिकरण होना चाहिए अर्थात हम कह सकते है कि अपराधी के दंडयता और उसके सुधार की सम्भावनाओं में तालमेल करने वाली होनी चाहिए।

वैधानिक नामवादः सभी क्रियाएं (अपराध) जिनका समा वैधानिक नाम होता है समान रूप से दोषी जानी जाती है इसलिए अपराधों का पुनर्वर्गीकरण होना चाहिए ताकि दंड में हर संभव विविधता हो सके।

हानिः दंड अपराधी के अपराध करने के इरादे से होना चाहिए अर्थात हम कह सकते है कि दंड की कठोरता अपराध के द्वारा पहुंची हानि पर निर्भर होनी चाहिए न कि बदले की भावना के उद्देश्य से।

संदर्भ

1. सदरलैण्ड, ई. एच (1965): प्रिंसिपल्स आफ क्रिमिनोलोजी, सिक्स्थ एडिशन, टाइम आफ इंडिया प्रेस, बम्बई
2. काल्डवेल, रोवर्ट जी (1956): क्रिमिनोलोजी, दी डिराडेन प्रेस लोवा
3. राम अहूजा, मुकेश अहूजा (1998): विवेचनात्मक अपराधशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
4. इलियट मेवल (1952): क्राइम इन मोडर्न सोसायटी, हारपंट एंड ब्रादर्स, न्यूयार्क
5. आहूजा राम (1981): अपराध शास्त्र, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ